महावीर : जीवन और उपदेश

प्रकाशक— श्री महावीर जैन संघ पंजाब

नम्र निवेदन : धन्यवाद

'पच्चीसवीं महावीर निर्वाण-शताब्दी' की आरम्भ तिथि जैसे-जैसे निकट आ रही है वैसे-वैसे जनता में नई चेतना का संचार हो रहा है, कोने-कोने का जन-मानस जागृत हो रहा है। अब तक प्राय: सभी प्रान्तों में राज्य स्तरीय निर्वाण कमेटियों का निर्माण हो चुका है और प्राय: सभी प्रान्तों में कार्य भी प्रारम्भ हो गया है।

पंजाब की सर्वदा अपनी एक विशेषता रही है कि वह जब जागता है, तो शेर के समान जागता है, भगवान महावीर का चिन्ह भी शेर है अत: पंजाब के शेर अब जाग पड़े हैं, पंजाब सब प्रान्तों से अधिक कार्य करे यही हमारी उमंग है और यही अभिलाषा है।

मैं आभारी हूं अपने समस्त सन्तवृन्द एवं सतीवृन्द का जिनके आशीर्वाद और प्रेरणाएं हमारा पथप्रदर्शन कर रही हैं और हमें प्रेरणा दे रही हैं, सोत्साह कार्य करने की।

पंजाब का यह सौभाग्य है कि पंजाब का समस्त जैन समाज आज एक सूत्र में बंधकर 'श्री महावीर जैन संघ' के नाम से संगठित होकर कार्य कर रहा है, संगठन की महाशक्ति से कौन अपरिचित है। फिर पंजाब सरकार जिस उत्साह से कार्य में लगी है, वह तो पंजाब के महान् गौरव के अनुकूल ही है। राज्य स्तरीय महावीर निर्वाण शताब्दी कमेटी के चेयरमैन माननीय प्रमुख मन्त्री श्री ज्ञानी जैलसिंह जी, कमेटी के वर्किंग चेयरमैन माननीय शिक्षा मन्त्री श्री गुरमेल सिंह जी, आदरणीय वित्तमन्त्री श्री हंस

राज जी शर्मा के उत्साह एवं सहयोग का तो हम अभिनन्दन करते ही हैं साथ ही हमारे परम सहयोगी समादरणीय श्री आर. पी. ओझा I.A. S. (सेक्रेटरी राज्य स्तरीय महावीर निर्वाण-शताब्दी कमेटी पंजाब) श्री एस. के दीवान एवं कुमारी रवनीत कौर I.A.S. (एडी-शनल डायरेक्टर टूरिज्म एण्ड एडीशनल डायरेक्टर पब्लिक रिलेशन) का अनथक परिश्रम जैन समाज कभी विस्मृत नहीं कर सकता और इनकी देख-रेख में बने महावीर स्मारकों पुस्तकालयों हास्पिटल्स आदि के साथ इनके नाम भी जैन समाज के लिये समादरणीय रहेंगे।

एस. एस. जैन महासभा पजाब (उत्तरी भारत), श्री आत्मा-नन्द जैन महासभा (रजिस्टर्ड) दिगम्बर जैन महासभा पंजाब, एवं तेरापन्थी जैन महासभा और पच्चीसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति के अधिकारियों एवं सदस्यों को भी मैं धन्य-वाद देना अपना कर्तव्य समझता हूं, क्योंकि सबका यथेच्छ सहयोग महावीर के निर्वाणोत्सव को मनाने के लिये हमें प्रेरित कर रहा है, नया उत्साह दे रहा है।

मैं पंजाब की समस्त जैन-सभाओं से सादर आग्रह करता हूं कि हम जो भी कार्यक्रम उनकी सेवा में भेजें उन्हें पूर्ण करने के लिये वे कृतसंकल्प रहें, जिससे जैन संस्कृति का गौरव बढ़ सके।

निवेदक

हीरा लाल जैन

फोन 21777

महामन्त्री—श्री महावीर जैनसंघ, पंजाब
जैन धर्मशाला, लुधियाना

भगवान महावीर : उपदेश और सिद्धान्त

तिलकधर शास्त्री

सम्पादक : [illegible] रश्मि

भगवान महावीर

आज सारा संसार भयंकर विपत्तियों से घिरा हुआ है। राष्ट्रीय स्तर पर भयंकर युद्धों ने और सामाजिक स्तर पर बढ़ते हुए हिंसामय कपटी और झूठे व्यवहार ने, सुरसा के मुंह के समान फलती हुई चोरी डाके और लूट-पाट की भयंकर घटनाओं ने, दुराचारी एवं व्यभिचारी प्रवृत्तियों ने, पूंजीवाद जमाखोरी और शोषण की हिंसक भावनाओं ने आज के मानव को व्यथित एवं पीड़ित ही नहीं राक्षस बना दिया है। इन परिस्थितियों से रक्षा की पुकार कर रहा है मानवता का हृदय।

ठीक इसी प्रकार का वातावरण ईसा से ५९९ वर्ष पहले भी उत्पन्न हुआ था, उस समय बेचैनी की आग में झुलसती मानवता की रक्षा के लिये एक महापुरुष का भारत की धरती पर अवतरण हुआ जिसका नाम था वर्धमान-महावीर, परन्तु आज वे भगवान महावीर के नाम से ही प्रसिद्ध हैं।

जन्म, कब, कहां

उनको जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ उत्तरी बिहार में गंडक नदी के तट पर बसे हुए वैशाली नगर के उपनगर कुण्डग्राम को। वहां के प्रजातन्त्र राज्य में ज्ञातृगण नामक एक क्षत्रिय समूह था, उसके प्रमुख महाराज सिद्धार्थ थे, उन्हीं की पत्नी

माता त्रिशला ने उन्हें जन्म दिया चैत्र महीने के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि को। उनके बचपन का नाम था 'वर्धमान'। जिसका अर्थ होता है बढ़का हुआ—वे बचपन से ही बढ़ते रहे मानवता के अन्तिम छोर को छूकर परमात्मा बनने के लिये और यह भी उनके जन्म का प्रभाव था कि उनके जन्म लेते ही प्रजा में सुख-शान्ति, कोषों में धन, और खेतों में धन-धान्य बढ़ने लगे थे।

वर्धमान साहसी, पराक्रमी, धैर्यवान्, करुणाशील और निर्मल बुद्धिवाले राज कुमार थे। पाठशाला में पहुंचते ही 'अल्प-काल सब विद्या पाई' की उक्ति उन पर चरितार्थ हुई। उनकी निर्मल एवं व्यापक बुद्धि के प्रभाव को देखकर विद्वानों का समूह उन्हें 'सन्मति'—अर्थात् 'अच्छी बुद्धिवाले कहने लगा था।

उनका जीवन मातृ-पितृ भक्ति का आदर्श है, इच्छा न होते हुए भी उन्होंने मातृ-भावना को आदर देते हुए राज कुमारी यशोदा से विवाह स्वीकार किया, किन्तु उनका मर्यादाओं में आबद्ध जीवन अनासक्तभाव से गृहस्थोचित धर्म का पालन करता रहा।

उन्होंने माता-पिता से गृह-त्याग की आज्ञा मांगी, पर सांसारिकता कहीं ममता का त्याग कर सकती थी ? कभी नहीं। माता-पिता की ममता ने आज्ञा नहीं दी। सरल प्रकृति महावीर ने बुरा नहीं माना, कोई हठ भी नहीं किया। चुपचाप सामान्य जीवन व्यतीत करने लगे। जैसे कि कुछ हुआ ही न हो, क्योंकि माता-पिता के निषेध पर भी घर से चले जाने पर उन्हें दुःख होता, यह भी तो हिंसा ही थी, हिंसा की सम्भावना महावीर के जीवन में हो नहीं सकती।

दो वर्ष बाद माता-पिता का देहान्त हो गया। अब उन्होंने

भाई नन्दीवर्धन से कहा—'मैं घर को छोड़ कर लोक-कल्याण और आत्मोद्धार के मार्ग पर जाना चाहता हूं। क्या आप मुझे आज्ञा दे सकेंगे? भाई के मोह ने भी इन्कार कर दिया। महावीर पुनः चुप हो गये। काष्ठ में आग रहती है, पर वह काम नहीं करती—जलाती नहीं, ताप नहीं देती, कुछ नहीं करती। महावीर भी घर में रह रहे थे, काष्ठ में अग्नि के समान, जीवन-व्यवहार से सर्वथा मुक्त, निर्लेप, उदासीन। जैसे कि घर में रहते हुए भी घर में न रह रहे हों।

भाई नन्दीवर्धन भाई की इस अदम्य उदासीनता और वैराग्यशीलता से प्रभावित होकर बोले—'वर्धमान! यदि तुम सब कुछ छोड़ना ही चाहते हो तो छोड़ सकते हो? मैं तुम्हें रोक कर कष्ट नहीं देना चाहता।''

महावीर प्रसन्न हो गए, वे तो घर को पहले ही छोड़ चुके थे, घर ने ही उन्हें न छोड़ा था। अब घर ने भी उन्हें छोड़ दिया तो वे मुक्त हो गए गृह-बन्धनों से।

बन्धु-बांधवों और नगर-निवासियों ने उन्हें 'चन्द्रप्रभा' नाम की पालकी में बिठला कर ज्ञात खण्ड नाम उद्यान में पहुंचाया। जनता उल्लसित भी थी, विस्मित भी थी और श्रद्धावनत भी थी।

वर्धमान महावीर ने वस्त्राभूषणों का त्याग कर दिया। अपने हाथों से अपने बाल पांच ही बार में उखाड़ दिये। बालों का उखाड़ना इस बात का परिचायक था कि शरीर की आसक्ति को अब मैंने उखाड़ फैंका है। मस्तिष्क को चेतना का केन्द्र माना जाता है, बाल उखाड़ कर उन्होंने यह प्रकट कर दिया कि अब मैंने ज्ञान-चेतना के आवरण उखाड़ फैंके हैं, शारीरिक सौन्दर्य के प्रति अनासक्ति भी केशलोच द्वारा स्वतः ही व्यक्त हो

उठी। पांच बार में केश लोच (पंच-मुष्टि-लोच) पांच ज्ञानेन्द्रियों पर और चार कषायों तथा मन पर विजय की सूचना थी।

उपवास

बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक वे लगातार भ्रमण करते रहे। साधु-जीवन की मर्यादा के अनुरूप केवल चातुर्मास-काल एक ही स्थान पर अवश्य होता था।

५३५८ दिन के तपोमय जीवन में उन्होंने केवल ३४९ दिन ही भोजन किया। ५००९ दिन उपवास। इस में भी उन्होंने दो बार तो लगातार छे-छे मास तक अन्न-जल ग्रहण न किया। चार मास के उपवास तो उन्होंने नौ बार किये। भगवान महावीर ने उपवास के क्षेत्र में रस-परित्याग की बात बार बार कही है। बात यह है कि उपवास में भोजन के रसकी अर्थात स्वाद की बार-बार याद आती है, अगर उपवास में भोजन की याद बनी रहे तो वह उपवास नहीं। उपवास में भोजन की स्मृति न आए तभी तो उसकी पूर्णता है। महावीर भोजन-रसकी स्मृतियों से सर्वथा मुक्त हो चुके थे।

एक विशेषता यह भी थी कि इतने लम्बे उपवासों के चलते रहने पर भी उनके शारीरिक सौन्दर्य में कोई कमी और विकृति न आ पाई थी, भोजन भी न हो और शारीरिक सौंदर्य भी कायम रहे, यही विलक्षणता थी उनके तपस्याकाल की। बात यह है कि वनस्पतियां, वृक्ष और धान्य रस लेते हैं सूर्य से, चन्द्र से, मिट्टी से, वायु से और मनुष्य रस लेता है वनस्पतियों, वृक्षों और धान्य से। सब लेते हैं, परन्तु भगवान महावीर की तपस्विनी जीवन-धारा को प्रकृति के सभी पदार्थ त्वचा एवं श्वास के माध्यम से रस देते

थे, अतः उनका शरीर ज्यों का त्यों ही रहता था और उपवास भी चलते रहते थे। जो भी हो भगवान महावीर की उपवास-परम्परा विलक्षण थी।

भगवान महावीर लगातार ४२ वर्ष तक भारत के कोने-कोने में घूम कर जनता का उद्धार करते रहे, जनता को अन्ध-विश्वासों से मुक्त कर उसका मार्ग-दर्शन करते रहे।

कष्ट-सहिष्णुता—

शारीरिक अनासक्ति की पराकाष्ठा के रूप में महावीर अप्रतिम हैं, उनके धैर्य ने अचल हिमाचल को भी परास्त कर दिया था, उनकी सर्वसहा ममता को देखकर धरा का धैर्य भी विस्मित हो रहा था। दोनों पैरों के बीच आग जलाकर मूढ़ पुरुषों ने क्षीर पकाई, उत्तर न देने पर ग्वाले ने कानों में कीलियां ठोक दीं, संगमक ने उन्हें विपत्तियों की आंधियों से उड़ाना चाहा, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। बात यह है कि कष्ट की अनुभूति तभी होती है जब चेतना शरीर के साथ सम्बन्ध बनाए रखती है, परन्तु जब चेतना ध्यान-प्रक्रिया के द्वारा सिमटती हुई अपने केन्द्र पर पहुंच जाती है उस समय शरीर के साथ आत्मा का कोई सम्बन्ध शेष नहीं रह जाता। तब शरीर शव के समान हो जाता है। शरीर आखिर तो जड़ ही है, जड़ को वेदना की अनुभूति कहां? आत्मा को शरीर से भिन्न करके आत्म-अवस्थित हो जाने की प्रक्रिया भगवान महावीर की अपनी प्रक्रिया है, जीवन-कला है।

केवल ज्ञान की ओर

तप, उपवास, सहिष्णुता और ध्यान की मौन साधना १२ वर्ष और तेरह पक्ष तक चलती रही।

वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की दशमी का दिन था, भगवान महावीर जृम्भिक (जंभिय) नामक ग्राम के बाहर ऋजुपालिका (ऋजुबालिका) नदी के किनारे श्यामक नाम के गाथापति के खेत में एक साल के वृक्ष के नीचे पहुंचे। दिन का चतुर्थ प्रहर आरम्भ हो चुका था। आज भगवान महावीर ने गोदुहासन में बैठ कर ध्यान लगाया था, अर्थात् आज उन्हें ज्ञात हुआ कि मेरी साधना की कामधेनु केवलज्ञान का दुग्ध देने के लिये मुझे प्रेरित कर रही है, अतः वे ऐसी मुद्रा में बैठ कर ध्यान करने लगे जैसे ग्वाला गाय का दूध दोहते समय बैठता है। साधना की कामधेनु ने ज्ञानामृत देना आरम्भ किया, महावीर ने उसका पान किया इसी ज्ञानामृत को हम 'केवल-ज्ञान' कहते हैं।

'केवलज्ञान' यह महापुरुषों की वह अवस्था है जब उनके लिये ज्ञान से भिन्न कुछ नहीं रह जाता है, केवल मात्र ज्ञान ही रह जाता है। भगवान ज्ञानरूप हो गए। न उनके लिये कुछ ज्ञेय रहा, "मैं ज्ञाता हूं" यह भान भी उनके लिये शेष न रह गया, केवल मात्र ज्ञान रह गया था, अतः वे केवली अथवा केवलज्ञानी बन गए।

समवसरण और संघ-स्थापना

ज्ञानरूप प्रभु महावीर सत्यरूप हो गए, अतः उन्होंने सत्य की प्रथम अभिव्यक्ति की। इस सत्योपदेश को सुननेवाला कोई मानव न था, ज्ञान एवं सत्य की यह स्वतः प्रवाहित होने वाली अभिव्यक्ति वातावरण में फैली और देवलोकों तक जा पहुंची। ध्वनि-तरंगों की दूरगामिता प्रसिद्ध है। अतः प्रथम ज्ञान-सभा का लाभ देव ही प्राप्त कर सके।

दूसरे दिन वैशाख शुक्ला एकादशी को भगवान मध्यमा

नगरी या मध्यमा पावा पहुंचे और वहां पर महासेन नामक उद्यान में ठहरे। भगवान महावीर के आगमन की चर्चा सुगन्ध के समान सर्वत्र फैल गई। चारों ओर शान्तभाव से नर-नारियों के बैठ जाने पर इस धर्म-सभा में भगवान महावीर ने मिथ्या धारणाओं में भटकती जनता के समक्ष उस महासत्य को प्रकट किया जिसे उन्होंने ज्ञानरूप होकर जाना था।

जैन संस्कृति धर्म-सभा को 'समवसरण' कहती है। समवसरण का अर्थ है समता के भाव के साथ नम्रतापूर्वक आगमन। भगवान महावीर की वाणी में समता थी, उन्होंने प्राणीमात्र को ही नहीं जड़ चेतन सबको समान दृष्टि से देखा, सबको नम्रता का—विनय का पाठ पढ़ाया और जनता ने भी यहां समता सीखी, विनयशीलता का पाठ पढ़ा और वह इसी पावन उद्देश्य से यहां आई थी। इसीलिये धर्म-सभा को हम 'समवसरण' कहते हैं।

इस समवसरण में भगवान महावीर ने जनता की उन आध्यात्मिक जिज्ञासाओं को पूर्ण किया जिनके समाधान उन्हें तत्कालीन विद्वान नहीं दे पा रहे थे।

मध्यमा पावा के सोमिलार्य नामक ब्राह्मण द्वारा किए जाने वाले यज्ञ में इन्द्रभूति, अग्निभूति आदि ११ विद्वान आए हुए थे। उनके हृदय में वेद-वाक्यों को लेकर अनेक प्रकार की शंकाएं थीं, जिन्हें भगवान महावीर ने वेद-मन्त्रों की यथार्थ व्याख्या करके दूर कर दिया। विशेषता यह थी कि किसी को शंका बतलानी नहीं पड़ती थी, महावीर स्वयं ही आगन्तुक की शंका बतलाते थे और स्वयं ही उसका समाधान कर देते थे।

शंका निवारक एवं आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करने वाले

गुरु के चरणों में इन ग्यारह विद्वानों ने शिष्यों सहित आत्म-समर्पण कर दिया। वे साधु बने नहीं, साधु हो गए।

आज तक की धारणाओं के अनुसार नारी मोक्ष की अधिकारिणी न थी, समतामूर्ति भगवान महावीर ने नारी-स्वतन्त्रता का समर्थन ही नहीं किया, अपितु यह प्रमाणित कर दिया कि नारी भी मोक्षाधिकार रखती है। आत्मोद्धार के लिये न तो नारीत्व बाधक है और न ही पुरुषत्व साधक है। आत्मोद्धार के लिये संयमशीलता की आवश्यकता है, सम्यक्ज्ञान अपेक्षित है, सम्यक्-दर्शन का होना अनिवार्य है और सम्यक्चारित्र मोक्ष में साधक है।

भगवान महावीर गृहस्थ को मोक्ष की साधना में बाधक नहीं मानते थे। अत: उन्होंने साधुत्व की भूमिका तैयार करने के लिये श्रावक-श्राविका वर्ग के जीवन की धर्म-भूमि पर बल दिया। तीव्र वैराग्योदय पर श्रावक साधु बने और तीव्र वैराग्योदय पर श्राविका साध्वी बने। इस प्रकार उन्होंने धार्मिक जीवन की सुव्यवस्था, मर्यादा और समुन्नति के लिये साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध श्री संघ की स्थापना की।

वैशाख शुक्ला एकादशी श्री-संघ की स्थापना का दिवस होने से जैनों के लिये यह महत्त्वपूर्ण दिवस है।

वर्गहीन समाज-रचना

भगवान महावीर के युग में समाज अनेक वर्गों में बंटा हुआ था, छूआछूत की संक्रामक बीमारी समाज को खाए जा रही थी। उन्होंने उस समय घोषणा की कि मानव मात्र की जाति एक है, अत: जन्म के आधार पर नहीं गुणों के आधार पर समाज की

व्यवस्था होनी चाहिए। उनके शिष्यों में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न गौतम स्वामी का जो आदर था वही आदर चाण्डाल जाति में उत्पन्न हरिकेशी का था।

अनेकान्तवाद का सिद्धान्त

महावीर सात मंज़िले महल की चौथी मंजिल पर बैठे थे, बच्चों ने भगवान महावीर की माता से पूछा कि 'वर्धमान' कहां हैं? माता ने कहा—'ऊपर हैं'। बच्चे ऊपर सातवीं मंज़िल पर वहां पहुंचे जहां सिद्धार्थ बैठे थे। बच्चों ने उनसे पूछा—'वर्धमान कहां हैं? उन्होंने कहा—'नीचे हैं?' जब बच्चे वर्धमान से मिले तो उन्होंने इस घटना की चर्चा उनसे की। वर्धमान कहने लगे—माता जी ठीक कहती थीं, उनकी दृष्टि में मैं ऊपर था चौथी मंज़िल पर। पिता जी ने भी ठीक कहा था, मैं उनकी दृष्टि में नीचे था सातवीं मंजिल की अपेक्षा से नीचे की चौथी मंजिल पर। वर्धमान ने तभी से सापेक्ष्यतावाद को अपनाते हुए कहा—प्रत्येक कथन में सत्यांश अवश्य होता है, किसी न किसी दृष्टि से। अतः किसी भी बात को सुनकर उस पर अनेक दृष्टियों से विचार करना चाहिए।

हिंसक यज्ञों का विरोध

भगवान महावीर ने कहा—'यज्ञ बुरे नहीं, परन्तु यज्ञों के नाम पर होनेवाली हिंसा बुरी है, यह हिंसा मानव जाति के लिये हानिकारक है और समाज को हिंसक बनाकर ज़ीवन को अस्तव्यस्त कर देनेवाली है।

व्यक्ति का महत्व

महावीर के युग में मनुष्य अपना जीवन ईश्वर की दया एवं क्रोध पर अवलम्बित मानकर अपने को आलसी और परावलम्बी

बना बैठा था। भगवान महावीर ने मनुष्य को उसकी महत्ता से परिचित करवाया और कहा—तुम्हारे सुख-दुख कर्मों पर अवलम्बित है, ईश्वर पर नहीं। ईश्वर मनुष्य स्वयं है, उसे "अहं ब्रह्मास्मि'—मैं ही ब्रह्म हूं इस वाक्य को अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखाना चाहिये।

उन्होंने कहा अपनी आत्म-शक्ति को देखो ! अपने महान् स्वरूप को पहचानो और अपने महान् परम रूप की प्राप्ति के लिये उद्यम करो।

उनके सिद्धान्त किसी समाज विशेष के लिये नहीं अपितु मानवमात्र के लिये हैं, अतः महावीर सब के हैं, सभी पर उनके उपकार हैं, अत: उनकी स्मृति को अक्षय रूप देने के लिये 'महावीर निर्वाण शताब्दी में सहयोग देना सब का कर्तव्य है। ●

भगवान महावीर
के
उपदेश-वचन

●

अहिंसा

१ सब प्राणियों को अपनी जिंदगी प्यारी है।

२. सब प्राणी जीना चाहते हैं, अतः किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो।

३. सब दुःख हिंसा से ही उत्पन्न होते हैं।

४. जिसे तू मारना चाहता है वह तूं ही है।

५. किसी से वैर-विरोध मत बढ़ाओ।

६. प्राणिमात्र का हित ही अहिंसा है।

७. दानों में सर्वश्रेष्ठ दान प्राणियों को अभय देना है।

८. दूसरों को त्रास मत दो।

९. हिंसा निश्चय ही बंधन है, मोह है, मृत्यु है और नरक है।

१०. जीवन अनित्य है, क्षण भर में नष्ट होनेवाला है, फिर क्यों दूसरों के जीवन को नष्ट कर अपना जीवन बनाना चाहते हो ?

११. किसी के प्राणों को बचाना और उसे भय से छुड़ाना ही सबसे बड़ा दान है।

सत्य

१. सत्य ही भगवान है।
२. अपनी प्रशंसा और दूसरों की निन्दा को असत्य ही समझो।
३. झूठ बोलने से बदनामी होती है, वैर बढ़ता है और मन में दुविधा पैदा होती है।
४. सत्य चन्द्र से भी अधिक सौम्य और सूर्य से भी अधिक तेजस्वी है।
५. सदा हितकारी सत्य वचन बोलना चाहिये।
६. सत्य यश का मूल है।
७. सत्य स्वर्ग का द्वार है।
८. सत्य वचन भी यदि कठोर है तो वह मत बोलो।
९. मन से बुरा मत सोचो, वचन से बुरा मत बोलो।
१०. सत्य ही विश्वास का आधार है।
११. दूसरों की निन्दा कभी हितकारी नहीं हो सकती।
१२. जो कुछ बोलो विचार कर बोलो।
१३. थोड़े में कहने योग्य बात को लम्बी मत करो।
१४. बुद्धिमान वही है जो किसी का उपहास नहीं करता।

अस्तेय (चोरी मत करो)

१. किसी की वस्तु को उसकी आज्ञा के बिना मत लो।
२. दूसरों की सम्पत्ति को हड़पनेवाले निर्दयी होते हैं।
३. दूसरे की वस्तु को ललचाई दृष्टि से देखना भी चोरी है।
४. चोरी अनार्य-कर्म है, अपयश देती है और सभी भले आदमियों ने इसकी निन्दा की है।

सदाचार

१. ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम तप है ।
२. ब्रह्मचर्य के नष्ट होते ही, मनुष्य के सभी गुण स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं ।
३. ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले के पास सभी सद्गुण स्वतः ही आ जाते हैं ।
४. जो बुरी दृष्टि से स्त्रियों की ओर देखता है उसका पतन अवश्यंभावी है ।
५. जो अपने को जीत लेता है, वह सबको जीत लेता है ।
६. हजारों भयंकर शत्रुओं पर विजय पाने से बढ़कर अपने आप पर विजय पाना है ।
७. गला काटने वाला शत्रु भी तुम्हारी उतनी हानि नहीं करता जितनी दुराचार करता है ।
८. जीवन और रूप सौन्दर्य बिजली की चमक के समान छिप जाने वाले हैं ।
९. जो अपने पर अनुशासन नहीं रख सकता, वह औरों पर अनुशासन कैसे कर सकता है ।

अपरिग्रह

१. जो व्यक्ति अपनी इच्छाओं को पूर्ण करना चाहता है वह मानो छलनी में पानी भरना चाहता है ।
२. जमाखोरी के समान कोई जाल और कोई बन्धन नहीं ।
३. हमें जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं का संग्रह भी इस प्रकार करना चाहिए कि उससे दूसरों को कष्ट न हो ।

४. मनचाहा लाभ न होने पर झुंझलाओ मत।

५. सब जगह सभी वस्तुओं में मन को मत लगाओ।

६. मिलने पर अभिमान मत करो और न मिलने पर शोक भी नहीं करना चाहिये।

जीवन के लिये आवश्यक

१. जो राग द्वेष को पार नहीं कर पाए वे संसार-सागर से पार नहीं हो सकते।

२. मनुष्य अपनी ही भूलों से भयंकर परिस्थितियों में फंस जाता है।

३. अज्ञानी सदा सोए रहते हैं और ज्ञानी सदा जागते रहते हैं।

४. असावधान के लिये सर्वत्र भय है और सावधान सर्वत्र निर्भय रहता है।

५. अपनी शक्ति को कभी छिपाना नहीं चाहिए।

६. संकटों में मन को डांवांडोल मत होने दो।

७. जो दुख की उत्पत्ति का कारण नहीं समझ पाए वे उसको दूर करने का कारण कैसे समझ पाएंगे।

८. अपने पाप-कर्म पर अभिमान करनेवाले से बढ़कर मूर्ख कौन है?

९. अभिमान ही मूर्ख का लक्षण है।

१०. रोगियों की सेवा के लिये सदा तत्पर रहना चाहिये।

११. डरपोक किसी का सहायक नहीं हो सकता।

१२. डरपोक दूसरों को भी डरपोक बना देता है।

३०. वर्तमान महत्त्वपूर्ण है, उसे सफल बनाओ।

३१. जो समय पर काम कर लेते हैं वे बाद में पछताते नहीं।

३२. जो कार्य जिस समय करने योग्य हो उसे उसी समय कर लेना चाहिए।

३३. जो रात बीत जाती है वह फिर लौट कर नहीं आती।

३४. धर्म के चार द्वार हैं—क्षमा, सन्तोष, सरलता और नम्रता।

३५. चाहे तुम्हारा कोई भी साथ न दे; तुम अकेले ही धर्म के मार्ग पर बढ़ते चलो।

३६. शरीर को भले ही छोड़ दो, परन्तु अपने कर्तव्य को नहीं।

३७. अपनी शक्ति को पहचान कर अपने कर्तव्य का पालन करते हुए राष्ट्र में विचरण करना चाहिए।
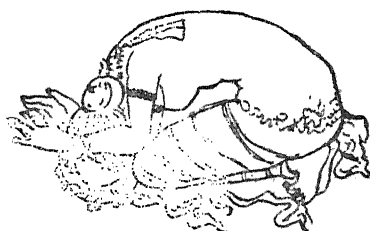
१३. चलने में जल्दी मत करो ।

१४. चलते हुए हंसना नहीं चाहिए ।

१५. क्रोध प्रेम का, अहंकार विनय का, कपट मित्रता का और लोभ सभी सद्गुणों का विनाश करना है ।

१६. क्रोध को शान्ति से, अहंकार को नम्रता से, कपट को सरलता से और लोभ को सन्तोष से जीतना चाहिए ।

१७. दूसरों की कमियां मत देखो ।

१८. वही व्यक्ति वीर और प्रशंसा के योग्य है जो अपने आपको तथा दूसरों को दासता से छुड़ाता है ।

१९. पहले बन्धन को समझो और फिर उसे तोड़ो ।

२०. बुद्धिमान वही है जो लड़ाई झगड़ा नहीं करता है, क्योंकि लड़ाई कभी हितकर नहीं हो सकती ।

२१. जहां कलह की सम्भावना हो उस स्थान से दूर ही रहो ।

२२. किसी को घूर कर मत देखो ।

२३. किसी की चुगली करना उसकी पीठ के मांस को नोचना है ।

२४. अपने आप पर भी कभी क्रोध मत करो ।

२५. बुरे के साथ बुरा बनना [illegible] है ।

२६. शेर के समान निर्भय होकर विचरण करो ।

२७. चार व्यक्ति पढ़ नहीं सकते विनय से रहित उद्दण्ड, चटोरा, झगड़ालू और कपटी ।

२८. स्वाध्याय से सभी पदार्थ प्रत्यक्ष हो उठते हैं ।

२९. स्वतन्त्रता के बिना शान्ति नहीं मिल सकती ।
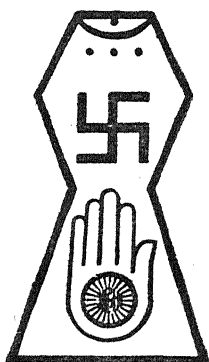
जैन प्रतोक ?

श्री हीरा लाल जैन
आत्म-नगर लुधियाना

भारत की सभी सांस्कृतिक परम्पराओं में पाताल से लेकर आकाश के उस अन्तिम भाग तक के विस्तृत प्रदेश को त्रिलोक कहा जाता है जहां तक धरती के जीवों की गति है। जैन परम्परा इसी त्रिलोक को 'लोक' कहती है और उसका स्वरूप कमर पर दोनों हाथ रखकर खड़े हुए पुरुष के समान मानती है। प्रस्तुत प्रतीक का बाह्याकार उसी लोक की प्रतिकृति है। इस लोक प्रतिकृति को शास्त्रकार मंगलकारी मानते हैं।

इस लोकाकार प्रतिकृति के बीच में जो हाथ है वह अभय का सूचक है जैन-संस्कृति अभय-दान को सर्वोत्तम कर्म बतलाती है।

हाथ के बीच बना चक्र धर्म-चक्र है जो अहिंसा की धुरी पर अवस्थित है। चक्र में २४ अरे हैं जो चौबीस दण्डकों के प्रतिरूप हैं।

हाथ के ऊपर स्वस्तिक है। स्वस्तिक का चिह्न जैन संस्कृति में ही नहीं विश्व की अधिकांश संस्कृतियों में मङ्गलचिह्न के रूप में स्वीकृत किया गया है। इसकी चार रेखाएं धर्म अर्थ काम और

मोक्ष के रूप में जीवन की पूर्णता एवं लक्ष्य का परिचय तो देती ही हैं साथ ही जीवन की चार गतियों के आवागमन की भी सूचक हैं।

स्वस्तिक के ऊपर तीन बिन्दु हैं जो त्रिरत्न अर्थात् सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्-दर्शन और सम्यक्-चरित्र का प्रतिनिधित्व करती हुई सन्देश देती हैं कि भली प्रकार देखो, भली प्रकार जानो और भला आचरण करो।

तीन बिन्दुओं के ऊपर अङ्कित चन्द्राकार चिह्न उस स्थान का परिचायक है जो लोक के अन्तिम छोर पर अवस्थित है और जहां मुक्तात्माएं निवास करती हैं जिसे जैन-परम्परा सिद्धशिला कहती है।

सबसे ऊपर दिया गया एक बिन्दु मुक्त आत्मा का प्रतिरूप है।

प्रतीक के नीचे लिखा है 'परस्परोपग्रहो **जीवानां**' जिसका अर्थ है जीवों का परस्पर उपकार।

इस प्रकार यह प्रतीक हमें अपने समग्ररूप में यह सन्देश देता है कि परस्पर एक दूसरे का उपकार करते हुए जो व्यक्ति अहिंसा मूलक धर्म का आचरण करता हुआ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से सम्पन्न मंगलकारी जीवन व्यतीत करता है वह चार गतियों में ही सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्र का आधार लेकर मोक्ष प्राप्त करके मुक्तात्मा अर्थात् परमात्मा बन सकता है।

इस प्रकार यह प्रतीक शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व का बोधक मंगलकारी चिह्न है, जिसका प्रयोग हमें प्रत्येक व्यवहार में करना चाहिए।

निर्वाण-वर्ष के आवश्यक महोत्सव

निर्वाण महोत्सव वर्ष के अन्तर्गत निम्नलिखित छः उत्सवों का आयोजन होना चाहिए :

१. निर्वाण महोत्सव दिवस	१० नवम्बर, १९७४ से १७ नवम्बर १९७४ तक
२. भगवान का दीक्षा दिवस (त्याग-दिवस)	८ दिसम्बर १९७४
३. भगवान का जन्म-दिवस	२४ अप्रैल, १९७५
४. केवल ज्ञान महोत्सव (ज्ञानोपासना)	२० मई, १९७५
५. भगवान की देशना (श्रुतोपासना)	२४ जुलाई, १९७५
६. निर्वाण महोत्सव समापन दिवस	४ नवम्बर, १९७५

उक्त उत्सवों के कार्यक्रमों को अत्यन्त व्यापक स्तर पर आयोजित किया जाना चाहिए। कार्यक्रमों के आयोजनों के लिते निम्नलिखित सुझाव हैं :

१. सभी उत्सव चारों समाजों के सम्मिलित प्रयास से सार्वजनिक रूप से आयोजित किये जाने चाहिए।

२. नगर में प्रातः या सायं विशाल जुलूस, प्रभात फेरी या सान्ध्य फेरी निकाली जानी चाहिए।

३. सभी मन्दिरों, स्थानकों तथा अन्य स्थानों पर पूजन, भजन, जप और ध्यान के प्रभावशाली आयोजन रखे जाने चाहिए।

४. छहों दिन, दिन में या शाम को एक विशाल सार्वजनिक सभा का आयोजन होना चाहिए और उसमें देश के गणमान्य व्यक्तियों तथा विद्वानों को आमंत्रित किया जाना चाहिए जो भगवान के जीवन और उपदेशों के बारे में जनता को उद्बोधन दे सकें।

. सभी समारोहों में जैन-ध्वज और जैन प्रतीक का व्यापक उपयोग किया जाना चाहिए ताकि समग्र जैन समाज की एकता को बल मिल सके।

६. विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में महोत्सवों के सम्बन्ध में भाषण, लेख तथा गीत प्रतियोगिताओं के आयोजन होने चाहिए तथा छात्रों को समुचित पारितोषिक दिये जाने चाहिए।

७. प्रमुख श्रावकों तथा कार्यकर्त्ताओं को सम्मानित किया जाना चाहिए। यह सम्मान भगवान के जन्मदिवस पर किया जा सके तो उत्तम होगा।

८. मन्दिरों, स्थानकों तथा जैन संस्थाओं में काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं को विशेष पारितोषिक दिये जाने चाहिए। यह पारितोषिक वितरण भगवान के जन्म या देशना के दिन दिया जा सकें तो उत्तम होगा।

९. जैन-धर्म व जैन-विद्या के विद्वानों और अनुसंधान कर्त्ताओं को सम्मानित किया जाना चाहिए तथा यह कार्यक्रम भगवान के केवल-ज्ञान की प्राप्ति के दिन हो सके तो उत्तम होगा।

१०. आचार्यों एवं मुनिवृन्द का अभिनन्दन एवं उनकी सेवाओं का उचित मूल्यांकन किया जाना चाहिए। यह कार्यक्रम दीक्षा महोत्सव के दिन रखा जाये तो उत्तम होगा। ●